



ISSN 2394-5303

Printing Area[®]

Peer Reviewed International Refereed Research Journal
Issue-55, Vol-02 July 2019



Editor

Dr.Bapu G.Gholap

- 41) नवजागरणकालीन भारत की सामाजिक राजनीतिक स्थिति
संजय कुमार साहु & डॉ० बलदेव राम, हजारीबाग ||177
- 42) संस्कृत साहित्य में न्याय तथा दण्ड व्यवस्था
रूपा शेखावत, चूरू, राजस्थान ||183
- 43) गीत काव्य के प्रेरक तत्व
डॉ. आभा श्रीवास्तव, कांकेर (छ.ग.) ||185
- 44) राष्ट्रीय आंदोलन में धमतरी क्षेत्र के पं. सुदरलाल शर्मा एवं बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव...
श्रीमति हेमलता सिन्हा ||188
- 45) बी. एड. महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं की सामाजिक स्वतंत्रता का ...
डॉ. अनुप्रिया शर्मा & चन्द्रकला त्रिपाठी ||191
- 46) रमेशचन्द्र शाह के उपन्यास साहित्य में ग्रामीण जनजीवन
डॉ. संध्या गंगराड़े & श्रीमती किरण अलावा, इन्दौर, मध्यप्रदेश ||195
- 47) उत्तगखंड के लोकगीत
प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड, जुले सोलापुर, महाराष्ट्र ||197

Printing@rea



संस्कृत साहित्य में न्याय तथा दण्ड व्यवस्था

रूपा शेखावत

एसोसिएट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू, राजस्थान

सारांश :—

संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित राजनीतिक दर्शन के अध्ययन की प्रायः उपेक्षा की जाती रही है। यह इसलिए हुआ कि, भ्रान्तधारणा रही है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में आध्यात्मिक पक्ष को दिया गया महत्व राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन की संभावनाओं का निषेध करता है। संस्कृत साहित्य में राजनीति से संबंधित मानव जीवन के आचार—व्यवहार, राजधर्म की व्याख्या, पर—राष्ट्र सम्बन्धी नीतियां तथा न्याय दण्ड व्यवस्था पर खुला विचार—विमर्श किया गया है। भीष्म ने विधि के चार स्रोत बताए हैं यथा — देव सम्मत, आर्ष, लोक सम्मत एवं संस्था सम्मत। वाल्मीकीय गमायण में भी प्रजा रक्षण, प्रजापालन, वर्णाश्रम का पालन करवाना भी तथा न्याय प्रदान करना राजा के कर्तव्य माने गये हैं।

मुख्य शब्द :—

राजनीति, संस्कृति, राजकार्य, विधि, धर्मशास्त्र, न्याय, दण्ड—व्यवस्था, अभियोग, अपराध, न्यायासन।

प्रस्तावना :—

संस्कृत साहित्य में राजनीतिक संस्कृति की चर्चा करते हुए दण्ड व न्याय व्यवस्था की जनता एवं राजा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बताते हुए सभी की विधि की पालना हेतु सुनिश्चित किया गया है। प्राचीन भारत में न्याय एवं दण्ड के बारे में विस्तारपूर्ण आकलन किया गया है जिसकी विवेचना प्रस्तुत ग्रंथ—पत्र में की गयी है।

न्याय व्यवस्था :—

भीष्म ने विधि की प्रधानता बताते हुए राज्य में धर्मशास्त्र के अनुसार न्याय व्यवस्था की स्थापना पर बल दिया है जिससे सभी व्यक्तियों के साथ समान रूप से व्यवहार हो सके।

विधि के स्रोत — भीष्म के मतानुसार विधि के चार स्रोत हैं —

१. देव सम्मत स्रोत अर्थात् मनुष्यों के कारण हेतु स्वयं ब्रह्म द्वारा निर्मित विधियाँ।

२. आर्ष स्रोत अर्थात् ऐसे नियम जिन्हें मानव जीवन को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अनुशासित व नियंत्रित करने के लिए ऋषि मुनियों ने बनाया हो।

३. लोक सम्मत स्रोत अर्थात् ऐसी विधियाँ जिनका निर्माण जनता की सम्मति से हुआ हो।

४. संस्था सम्मत स्रोत अर्थात् ऐसी विधियाँ जिनका निर्माण जनता की संस्थाओं द्वारा निर्मित नियम जैसे कुल धर्म, जाति धर्म, देश धर्म आदि।

भीष्म के अनुसार चारों आश्रमों के पालन करने से मनुष्य जिस पुण्य का भागी होता है वह पुण्य राजा को इन विधियों के पालन करने मात्र से हो जाता है।

दण्ड एवं न्याय व्यवस्था :—

प्राचीन भारत में दण्ड व्यवस्था के संचालन को राजा का आवश्यक कार्य समझा गया। दण्ड की महत्ता का महाभारत में प्रभावशाली वर्णन हुआ है। कहा गया है कि दण्ड ही सबका नियन्ता है। सुप्रणीत दण्ड में धर्म, अर्थ, काम, ये तीनों सदा विद्यमान रहते हैं। दैव दण्ड सबसे श्रेष्ठ है, उसका रूप जलती हुई अग्नि के समान है।

धर्म ही जिनकी जड़ है उस धर्मासन अथवा न्यायासन पर बैठकर जो राजा मंत्री अथवा राजकुमार धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा नहीं करता तथा राजा का अनुसरण करने वाले राज्य के दूसरे अधिकारी भी यदि अपने को सामने रखकर प्रजा के साथ उचित बर्ताव नहीं करते तो वे राजा के साथ स्वयं भी नरक में जाते हैं।

जब कोई अभियोग उपस्थित हो और उसमें

उभय पक्ष द्वारा दो प्रकार की बातें कही जाये तब उसमें यथार्थता का निर्णय करने के लिए साक्षी का बल श्रेष्ठ माना गया है। मौके का गवाह बुलाकर सच जानने का प्रयास करना चाहिए। यदि कोई गवाह न हो, उस मामले की पैरवी करने वाला कोई मालिक मुख्तार न दिखाई दे तो राजा को स्वयं ही विशेष प्रयत्न करके उसकी छानबीन करनी चाहिए। तत्पश्चात् अपराधियों को अपराध के अनुरूप दण्ड देना चाहिए। अपराधी धनी हो तो उसको उसकी सम्पत्ति से वंचित कर दे और निर्धन हो तो उसे बन्दी बनाकर कारागार में डाल दें। जो अत्यन्त दुर्गचारी हो उन्हें मारपीट कर भी राजा राह पर लाने का प्रयास करें।

जो राजा का वध करने की इच्छा करे, जो गांव या घर में आग लगायें, चोरी करे या व्यभिचार द्वारा वर्ण संकरता फैलाने का प्रयास करें, ऐसे अपराधी का वध अनेक प्रकार से करना चाहिए।

जो भलीभाँति विचार करके अपराधी को उचित दण्ड देता है और अपने कर्तव्य पालन के लिये सदा उद्यत रहता है, उस राजा को वध और बन्धन का पाप नहीं लगता अपितु उसे सनातन की ही प्राप्ति होती है।

महाभारत में शान्ति पर्व में दण्ड को ही सबसे अधिक ईश्वर की सजा दी गई है तथा यह माना गया है कि दण्ड के ही आधार पर सब टिका हुआ है। देवता, ऋषि, पितर, महात्मा, राक्षस, पिशाच तथा साध्यगण एवं पशु पक्षियों की योनि में निवास करने वाले जगत के समस्त प्राणियों के लिये भी सर्व व्यापी महातेजस्वी दण्ड ही कल्याण का साधन है। धर्म का दूसरा नाम व्यवहार है। लोक में सतत् सावधान रहने वाले पुरुष के धर्म का किसी तरह लोप न हो इसलिए दण्ड की आवश्यकता है और यही इस व्यवहार का व्यवहारत्व है।

पूर्व में मनु ने यह उपदेश दिया है कि जो राजा प्रिय और अप्रिय के प्रति समान भाव रखकर, किसी के प्रति पक्षपात न करके दण्ड का कठोर उपयोग करते हुए प्रजा की भली भाँति रक्षा करता है, उसका वह कार्य केवल धर्म है। अर्थ—अनर्थ, सुख—दुख, धर्म—अधर्म, दुर्भाग्य—सौभाग्य, पुण्य—पाप, गुण—अवगुण, काम—अकाम, दिन—रात, प्रमाद—अप्रमाद,

सत्य—असत्य, ज्ञान—श्रद्धा ये सब दण्ड के ही अनेक नाम व रूप हैं। इस प्रकार जगत में दण्ड के अनेक रूप हैं।

अवलोकन :—

प्रस्तुत अध्ययन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध महाकवि भास, दण्डी, कालीदास, भारवि, रामायण आदि में राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न पक्ष यथा— राजा—प्रकृति, राजधर्म, युद्ध—व्यवस्था, दण्ड—व्यवस्था, सन्धियों आदि महत्वपूर्ण विषय में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था पर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास है। न्याय एवं दण्ड व्यवस्था संस्कृति साहित्य में उपलब्ध अध्ययन का आधारभूत विषय भी रहा है। अतः मुझे प्रस्तुत शोध—पत्र लिखने में सहायता मिली।

निष्कर्ष :—

संस्कृत—साहित्य में विवेचित न्याय व दण्ड व्यवस्था के अध्ययन को मेरे द्वारा पूर्वाग्रह से युक्त रखने का तथा तार्किक विवेचन पर आधारित करने का एक प्रयास किया गया है। राजा के दायित्वों में दण्ड का धर्मानुसार प्रयोग करने को उचित ठहराया गया है एवं न्याय—व्यवस्था के अत्यन्त महत्व के साथ चित्रित किया गया है। न्याय—व्यवस्था को राज्य के केन्द्रीय दायित्व के रूप में व्यक्त किया गया है। राज्य का स्वरूप अनिवार्यतः लोक कल्याणकारी है जिसमें न्याय एवं दण्ड पर आधारित व्यवस्था निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। प्राचीन न्यायपालिका की न्याय प्रियता, नीर क्षीर विवेक, कठोर दण्ड जैसी भावनाएं वर्तमान न्याय—व्यवस्था की लम्बी प्रक्रिया, वकील प्रथा, महंगी फीस एवं मिथ्या साक्ष्य के दौर में अलभ्य है।

यदि संसार में दण्ड की व्यवस्था न होती तो सब लोग एक दूसरे को नष्ट कर डालते। दण्ड के ही भय से मनुष्य आपस में मार काट नहीं करते। माता—पिता, भाई, स्त्री तथा पुरोहित कोई भी क्यो न हो जो अपने धर्म में स्थिर नहीं रहता, उसे राजा अवश्य दण्ड दे। राजा के लिए कोई भी अदण्डनीय नहीं है।

सन्दर्भ—ग्रन्थ सूची :—

१. मनुस्मृति

२. महाभारत

३. रामायण
४. नीति ग्रंथ
५. कौटिल्य—अर्थशास्त्र
६. शुक्रनीति
७. माघ—शिशुपालवधम्
८. भारवि—किरतार्जुनीयम्
९. दण्डी—दशकुमार चरितम्
१०. के. पी. जायसवाल—मनु एवं याज्ञवल्क्य
११. प्रो. मधुकर श्याम चतुर्वेदी — प्रमुख
भारतीय राजनीतिक चिन्तन
१२. डॉ. केदार शर्मा — प्राचीन संस्कृत वांगमय
में राजधर्म का स्वरूप
१३. डॉ. डी. के. चारण — कौटिल्य के
अर्थशास्त्र का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन
(शोध ग्रंथ)

